International Journal of Applied Research 2017; 3(6): 23-26

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(6): 23-26
www.allresearchjournal.com
Received: 06-04-2017
Accepted: 07-05-2017

यत्नेश यादव
शोधछात्रा इतिहास विभाग
डॉ. भीमराव अम्बेडकर
विश्वविद्यालय, आगरा,
उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
यत्नेश यादव
शोधछात्रा इतिहास विभाग
डॉ. भीमराव अम्बेडकर
विश्वविद्यालय, आगरा,
उत्तर प्रदेश, भारत

प्राचीन भारत में बौद्धयुग की शिक्षा-पद्धति और तत्कालीन प्रमुख बौद्ध केन्द

यत्नेश यादव

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में एक अन्य प्रकार के शिक्षा केन्द्रों की भी सत्ता थी, जिनमें एक विशिष्ट प्रकार के विचार-सम्प्रदायों का विकास हो रहा था। 'मानव, ओशनस्, बार्हस्पत्य' आदि कितने ही विचार-सम्प्रदाय प्राचीन भारत में विद्यमान थे, जिनके आचार्यों ने धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट विचारसारणी का विकास किया था। इनके प्रवर्तक 'मनु उशनस्, पराशर, बृहस्पति' आदि प्रतिभाशाली आचार्य थे, जो धर्म, राजनीति, दार्शनिक तत्व आदि के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन किया करते थे। उन्होंने जिन नये विचारों व मन्तव्यों का प्रतिपादन किया, उनके शिष्यों द्वारा उनका निरन्तर विकास किया जाता रहा। इस प्रकार विविध स्वतन्त्र एवं पृथक् विचार-सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हो गया, जिनके मन्तव्यों का आभास कौटलीय अर्थशास्त्र आदि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्धयुग और उसके बाद के काल में शिक्षा की पद्धति

महाभारत युद्ध के पश्चात् जब सत्य सनातन वैदिक धर्म के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा, और जैन, बौद्ध, चार्वाक तथा आजीवक सदृश अनेक ऐसे सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, जो वेदों की मान्यता को स्वीकार नहीं करते थे, तो शिक्षा-पद्धति में भी अनेक परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गये। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का अनुसरण कर उस समय बहुत से व्यक्ति किशोर आयु में ही भिक्षु व्रत ग्रहण करने लग गये थे, जिससे प्राचीन काल की आश्रम मर्यादा को बहुत आघात पहुँच रहा था। वैदिक धर्म द्वारा प्रतिपादित आश्रम-व्यवस्था में भी सन्यास आश्रम को स्थान प्राप्त है। परन्तु सन्यास का अधिकार केवल उन लोगों को है, जिनकी सब एषणाओं व कामनाओं की निवृत्ति हो चुकी हो और प्राणिमात्र के हित कल्याण में अपना समय बिताने को उद्यत हों। परन्तु बुद्ध की शिक्षाओं ने किशोरवय की कुमारियों तथा कुमारों के लिए भी भिक्षुव्रत ग्रहण करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था, और वे अच्छी बड़ी संख्या में भिक्षु बनकर बौद्ध विहारों में निवास करने लग गये थे। उस युग के धनी गृहस्थ और राजा बौद्ध विहारों के लिए उदारतापूर्वक दान देते थे, जिसके परिणामस्वरूप पाटलिपुत्र, श्रावस्ती, काशी, गया, काम्पिल्य, शाकल्य आदि नगरों में बहुत से विहार स्थापित हो गये थे, जिनमें सैकड़ों, हजारों की संख्या में भिक्षु निवास करने लगे थे। भिक्षुणियों के लिए पृथक् विहारों की सत्ता थी। ये विहार शिक्षा के भी महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। इनमें आचार्य और उपाध्याय अध्यापन का कार्य किया करते थे। शुरू में इन विहारों का स्वरूप प्राचीन काल के आचार्यकुलों व आश्रमों से अधिक भिन्न नहीं था। [1] परन्तु समयान्तर में जब अनाथपिण्डक सदृश गृहपतियों और अशोक सदृश राजाओं ने कोटि-कोटि धनराशि इन विहारों को देनी प्रारम्भ कर दी, तो इनके आचार्यों और भिक्षुओं के जीवन में त्याग और तपस्या का स्थन सुख, वैभव व विलास ने लेना प्रारम्भ कर दिया, और प्राचीन आचार्यकुलों के ब्रह्मचारियों के समान बौद्ध विहारों के भिक्षुओं को भैक्षचर्या द्वारा जीवन-निर्वाह करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। इन विहारों के स्थविर, आचार्य, उपाध्याय और भिक्षु बड़े ठाट-वाट से रहने लगे और उनमें त्याग, तपस्या एवं सदाचरण का विशुद्ध

वातावरण नहीं रह गया। परन्तु जहाँ तक विद्या के पठन-पाठन का सम्बन्ध है, बौद्धविहार शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र हुआ करते थे, और उनमें सैकड़ों भिक्षु धर्मग्रन्थों तथा विविध विद्याओं का अध्ययन किया करते थे। उस समय तक्षशिला तथा काशी जैसे नगरों में बहुत से ऐसे शिक्षा-केन्द्र या विद्यापीठ स्थापित हो गये थे जिनमें विश्वविख्यात आचार्य कतिपय विशिष्ट विषयों की उच्च शिक्षा दिया करते थे और इन आचार्यों की अनुपम विद्वता तथा कीर्ति से आकृष्ट होकर दूर-दूर के प्रदशों के विद्यार्थी उनके पास विद्याध्ययन के लिए आया करते थे। बौद्ध साहित्य के अन्यतम अंग जातक कथाओं द्वारा इन शिक्षा केन्द्रों के विषय में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं, जिनका उल्लेख करना उपयोगी है।

तक्षशिला - यह भारत का प्राचीनतम एवं प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। आज कल पश्चिमी पंजाब में जहाँ रावलपिण्डी नगर बसा हुआ है, उससे अठारह मील दूर यह विश्वविद्यालय स्थित था। रामायण के अनुसार भारत ने गन्धर्वों का संहार करके गन्धर्व देश में तक्षशिला नगरी बसाई और अपने पुत्र तक्ष को वहाँ का शासक नियुक्त किया।[2] महाभारत में भी इन नगरी का उल्लेख है। जनमेजय ने जिस सर्पयज्ञ का आयोजन किया था, वह इसी स्थल पर हुआ था। [3]

तक्षशिला के विद्यापीठों में शिक्षा प्रारम्भ करने की आयु सोलह वर्ष थी। इसे पूर्व विद्यार्थी अपने-अपने प्रदशों के आचार्यकुलों में ही विद्याध्ययन किया करते थे। राजकुलों तथा सम्पन्न वर्ग के परिवारों में यह प्रथा चल पड़ी थी, कि वे अपने कुमारों को उच्च शिक्षा के लिए तक्षशिला भेजा करें। उनके अपने प्रदेश में भी चाहे कोई सुयोग्य आचार्य विद्यमान हो, पर वे यह उपयोगी समझते थे कि विद्यार्थी कुछ समय तक्षशिला में निवास कर वहाँ के 'विश्वविख्यात' आचार्यों से शिक्षा प्राप्त करें। तक्षशिला के विद्यापीठों में दो प्रकार के विद्यार्थी हुआ करते थे। धम्मन्ते-वासिक और आचारिय भागदायक। [4] धमन्तेवासिक विद्यार्थी दिन के समय आचार्य के विविध प्रकार के कार्य किया करते थे, और रात को विद्याध्ययन करते थे। उनसे शिक्षा व भोजन का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। आचारिय भागदायक विद्यार्थी आचार्य के घर में ज्येष्ठपुत्र की तरह निवास करते थे। उन्हें अपने निर्वाह के लिए कोई कार्य या श्रम करने की आवश्यकता नहीं थी, और वे अपना सब समय विद्याध्ययन में लगा सकते थे। तक्षशिला में 'आचारिय भागदायक' के रूप में शिक्षा प्राप्त करने का शुल्क एक हजार कार्षापण था। जो विद्यार्थी यह शुल्क दे सकते थे, वे आचार्य के घर में आराम के साथ रहा करते थे। परन्तु जो विद्यार्थी यह शुल्क नहीं दे सकते थे, उनके लिए भी तक्षशिला में शिक्षा-प्राप्ति की व्यवस्था थी। वे दिन वमें काम करके रात को पढ़ाई करते थे, और इस प्रकार स्वावलम्बी जीवन बिताते थे। [5] तक्षशिला की कीर्ति से आकृष्ट होकर जो निर्धन विद्यार्थी वहाँ पहुँचते थे, उन्हें आचार्य द्वारा काम दिया जाता था और इस प्रकार वे अपना खर्च स्वयं कमा लिया करते थे। इन दो तरह के विद्यार्थियों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के विद्यार्थी भी तक्षशिला के विद्यापीठों में हुआ करते थे, जो न निर्धारित शुल्क देते थे और न दिन में काम करके केवल रात के समय में ही पढ़ा करते थे। वे यह प्रतिज्ञा करते थे कि पढ़ाई पूरी कर चुकने के बाद शुल्क की राशि चुका देंगे। इस प्रकार के कितने ही विद्यार्थियों की कथाएँ जातक साहित्य में विद्यमान हैं। [6]

तक्षशिला में अनेक विश्वविख्यात आचार्यों के विद्यापीठों की सत्ता थी। एक आचार्य के पास (एक विद्यापीठ में) प्रायः पाँच सौ विद्यार्थी विद्याध्ययन किया करते थे। शिक्षापूर्ण कर तक्षशिला के विद्यार्थी शिल्प, व्यवसाय आदि का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने पर विविध देशों के रीति-रिवाजों से अवगत होने के लिए देश-देशान्तर का भ्रमण भी किया करते थे। शिक्षा के केन्द्र के रूप में तक्षशिला नगरी इतनी अधिक प्रसिद्ध थी, कि बड़े-बड़े राजा, भूपति और सम्पन्न व्यापारी अपने पुत्रों को विद्याध्ययन के लिए वहाँ भेजा करते थे। जातक कथाओं के अनुसार वाराणसी का राजकुमार ब्रह्मदत्त, मगधराज का पुत्र अरिन्दम, कुरुदेश का राजकुमार सुतसो, मिथिला का राजकुमार विदेह, इन्द्रप्रस्थ का राजकुमार धनन्जय और कम्पिल्य देश का राजकुमार वहाँ पढ़ने के लिए गये थे। मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी तक्षशिला में ही शिक्षा प्राप्त की थी। आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य तक्षशिला में ही अध्यापन का कार्य करते थे और चन्द्रगुप्त उन्हीं का शिष्य था।

तक्षशिला के विद्यापीठों में विद्यार्थियों का जीवन किस प्राकर बीतता था, इस सम्बन्ध में भी जातकसाहित्य में कपितय निर्देश विद्यमान हैं। विद्यार्थी वहाँ अपने आचार्य के निरीक्षण में रहते थे। उनके जीवन के सुधार और उन्हें सदाचारी बनाने पर आचार्य विशेष ध्यान देते थे। यही कारण है, कि अनेक प्रकार के दण्ड भी तक्षशिला में विद्यार्थियों को दिये जाते थे। शारीरिक दण्ड देने की भी वहाँ प्रथा थी।

जातक कथाओं के अनुसार तक्षशिला के विद्यापीठों में निम्नलिखित विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी - 1. त्रयी विद्या या वेद। 2. अष्टादश विद्याएँ-जातकों में बार-बार यह कथा आती है, कि अमुक कुमार ने तक्षशिला में रहकर अष्टादश विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त की थी। परन्तु 18 विद्याएँ कौन-कौन सी थी। इस विषय में उनसे निश्चित सूचना नहीं मिलती। 3. शिल्प, 4. हस्तविद्या, 5. धनुर्विद्या, 6. मन्त्रविद्या, 7. सब प्राणियों की बोलियों को समझ सकने की विद्या, और 8 चिकित्साशास्त्र। तक्षशिला में चिकित्साशास्त्र की शिक्षा की विशेष रूप से व्यवस्था थी। मगध के राजा बिम्बसार के प्रसिद्ध राजवैद्य जीवक ने तक्षशिला में ही शिक्षा प्राप्त की थी। त्रयी (वेद) के अतिरिक्त आन्वीक्षकी (दर्शनशास्त्र), वार्ता (सम्पत्तिशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति विज्ञान) के अध्ययन के लिए भी दूर-दूर के प्रदेशों से विद्यालयों के विद्यार्थी तक्षशिला जाया करते थे। आचार्य चाणक्य इन्हीं विद्याओं के पारंगत विद्वान थे, और इनहीं का अध्यापन किया करते थे।

तक्षशिला के अतिरिक्त अन्य भी अनेक नगर बौद्धयुग एवं उसके पूर्ववर्ती काल में शिक्षा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे। इनमें काशी (वाराणसी) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जातक कथाओं में उसका भी शिक्षा के केन्द्र के रूप में उल्लेख है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में काशी विद्या का प्रमुख केन्द्र था। संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए आधुनिक युग में भी इस

नगरी का महत्त्व है। काशी का यह महत्त्व छठी सदी ईसवी पूर्व में ही प्रारम्भ हो चुका था। [7]

तक्षशिला के जिन विद्यापीठों का उल्लेख किया गया है, वे प्राचीन समय के आचार्यकुलों से अनेक अंशों में भिन्न थे। वे एक सम्पन्न नगरी में स्थित थे, और उनके आचार्य एवं विद्यार्थी आरण्यक-आश्रमों में न रहकर नागरिक जीवन बिताते थे। भैक्षचर्या से निर्वाह करने की परम्परा भी इन विद्यापीठों में नहीं थी। इनके विद्यार्थी या तो आचार्य को निवास, भोजन तथा शिक्षा के लिए निर्धारित शुल्क देते थे, या शिक्षा की समाप्ति पर शुल्क प्रदान करने की प्रतिज्ञा करते थे, और या दिन में कार्य (श्रम) आदि करके खर्च के योग्य धन उपार्जित कर लेते थे। तक्षशिला के विद्यापीठों में प्रायः ऐसे ही विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आया करते थे, जो अपनी आयु के सोलह वर्ष पूरे कर चुके हों और जिन्होंने दस साल के लगभग कहीं अन्यत्र (यथा अपने प्रदेश के किसी आचार्यकुल में) शिक्षा प्राप्त कर ली हो। तक्षशिला के विद्यापीठ प्राचीन काल के आचार्यकुलों के उत्तराधिकारी या स्थानापन्न न होकर उनके पूरके थे, क्योंकि उनमें विशेष रूप से कतिपय विद्याओं की उच्च शिक्षा की ही व्यवस्था थी, और उनका अध्यापन ऐसे गुरुओं या आचार्यों द्वारा किया जाता था, जो अपनी विद्वता तथा सदाचरण के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध (विश्वविख्यात) थे।

कौटिलीय अर्थशास्त्र (चौथी सदी ईस्वी पूर्व) में राजकुमारों की शिक्षा का विशद रूप से निरूपण किया गया है। उनकी शिक्षा के पाठ्य-पुस्तकों में चतुरंग बल (पदातिसेना, अश्वसेना, हस्तिसेना और रथसेना) के संचालन, अस्त्र-शस्त्र, व्यूहरचना, शत्रु के व्यूह का विनाश, पुराण, इतिवृत्त (इतिहास), आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और दण्डनीति की शिक्षा का समावेश है। 'मिलिन्दपन्हो:' नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार राजा मिलिन्द (यवन राजा मिनान्दर) श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, गणित, संगीत, चिकित्सा विज्ञान, धनुर्विद्या, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, काव्य, युद्धविद्या और तन्त्र आदि विविध विद्याओं में पारंगत था। यह सहज में अनुमान किया जा सकता है, कि बौद्ध युग के राजा और राजकुमार जहाँ इन विद्याओं तथा विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त किया करते थे, वहाँ अन्य लोगों की शिक्षा में भी इन्हें स्थान प्राप्त रहता था। कौटलीय अर्थशास्त्र से यह भी सूचित होता है कि पठन-पाठन प्रारम्भ करने से पूर्व बालकों का चौल कर्म (मुण्डन संस्कार) कराया जाता था, और उसके बाद ही उन्हें लिपि तथा संस्था (गिनती) की शिक्षा देनी शुरू की जाती थी।

बौद्ध विहार जहाँ बौद्ध धर्म के अध्ययन के महत्वपूर्ण केन्द्र थे, वहाँ विविध विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की भी उन्में शिक्षा दी जाती थी। समयान्तर में अनेक विहारों ने वही रूप प्राप्त कर लिया था, नैमिषारण्य के शौनक आश्रम तथा प्रयाग के भारद्वाज आश्रम का था। इन्हें 'महाविहार' कहा जाने लगा था, और इनमें हजारों की संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। इनमें नालन्दा, विक्रमशिला, उड्यन्तपुर और बलभी के महाविहार उल्लेखनीय है। मध्यकालीन भारत की शिक्षा-पद्धति को भली-भाँति समझने के लिए इन पर कुछ प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

नालन्दा महाविहार की स्थापना गुप्तवंशी सम्राट् कुमार गुप्त (राज्यकाल 415-55 ईस्वी) ने की थी। नालन्दा पहले भी शिक्षा का केन्द्र था, पर कुमारगुप्त ने जब वहाँ विद्या और शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए एक महाविद्यालय की स्थापना की, तबसे उसकी ख्याति बढ़ने लगी। कुमारगुप्त के बाद अन्य गुप्तवंशी, सम्राटों ने भी वहाँ बहुत सी इमारते बनवायीं, और नालन्दा के शिक्षकों और विद्यार्थियों के खर्च के लिए बहुत सी जायदाद लगा दी। शीघ्र ही, शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र के रूप में नालन्दा की ख्याति दूर-दूर तक पहुँच गई, और देश-विदेश के हजारों विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए वहाँ आने लगे। अनेक चीनी विद्वान् भी उसकी कीर्ति से आकृष्ट हुए। प्रसिद्ध चीनी यात्री व्हेनसांग उनमें एक था। उसके यात्रा विवरण से ज्ञात होता है, कि नालन्दा के शिक्षकों और विद्यार्थियों की संख्या दस हजार से भी अधिक थी। वहाँ के आचार्य अपने ज्ञान और विद्वता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे, और उनका चरित्र भी अत्यन्त उज्जवल तथा निर्दोष था। सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इत्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री नालन्दा आया था। उसने लिखा है कि नालन्दा महाविहार में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या हजारों में थी, और उसमें प्रवेश के लिए व्याकरण, हेतुविद्या (न्यायशास्त्र) तथा अभिधर्मकोश का ज्ञान आवश्यक था। महाविहार में शिक्षा के लिए प्रवेश पा चुकने पर विद्यार्थी जहाँ बौद्ध धर्म के विशाल साहित्य का अध्ययन करते थे, वहाँ साथ ही शब्दविद्या, वेद, सांख्य, तन्त्र और चिकित्साशास्त्र आदि की भी शिक्षा प्राप्त करते थे। महाविहार का खर्च चलाने के लिए राज्य की ओर से बहुत-सी भू-सम्पत्ति प्रदान की गई थी, जिसकी सब आमदनी इस शिक्षा-केन्द्र पर ही खर्च होती थी। नालन्दा का पुस्तकालय बहुत विशाल था। उसकी तीन विशाल इमारतें थीं, जिनके नाम रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नारंजक थे। रत्नोदधि भवन नौ मंजिलों का था, और उसमें धर्मग्रन्थों का संग्रह किया गया था। अन्य दोनों भवन भी अत्यन्त विशाल थे।

नालन्दा के समान विक्रमशिला का महाविहार भी शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। इसकी स्थापना पाल वंशी राजा धर्मपाल ने नौवीं सदी में की थी। बौद्ध धर्म के अनुयायी पालवंशी इस राजा ने विक्रमशिला में एक-महाविहार कर निर्माण करवाकर अध्यापन के लिए वहाँ 108 आचार्यों की नियुक्ति की थी, बाद में इन आचार्यों व शिक्षकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। विक्रमशिला में जो भी विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे, उनमें वेद, वेदांग, उपवेद, हेतुविद्या (न्याय), सांख्य, योग और बौद्धों के हीनयान तथा महायान सम्प्रदायों के ग्रन्थ प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र की शिक्षा विक्रमशिला की प्रधान विशेषता थी। इस समय तक तान्त्रिकों व सिद्ध योगियों की परम्परा भारत में प्रारम्भ हो चुकी थी।

नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारों के समान ही विहार प्रदेश में प्राचीन समय में उड्यन्तपुर या उदन्तरपुर का महाविहार था, जिसकी स्थापना पाल वंश के प्रवर्तक राजागोपाल द्वारा की गई थी। धीरे-धीरे यह भी शिक्षा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया था, और बारहवीं सदी तक इसकी ख्याति तथा स्थिति नालन्दा और विक्रमशिला से भी अधिक हो गई थी। 1199 ईस्वी में जब मोहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने बिहार प्रदेश पर आक्रमण किया,

तो वहाँ का राजा पालवंशी गोविन्द पाल था। उसकी शक्ति नगण्य थी। बिहार को आक्रान्त करते हुए मुहम्मद का ध्यान उदन्तपुर के महाविहार की ओर गया, जो एक विशाल दुर्ग के समान था। तुर्क सेनाओं ने उसे घेर लिया, और उस पर हमला कर दिया। इस अवसर पर उदन्तपुर के आचार्यों और विद्यार्थियों ने भी शस्त्र उठाये, और डटकर मोहम्मद की सेनाओं का मुकाबला किया। जब तक एक भी आचार्य व विद्यार्थी जीवित रहा, उन्होंने उदन्तपुर पर तुर्कों का अधिकार नहीं होने दिया। जब महाविहार के सब निवासी लड़ते-लडते मारे गए, तभी मोहम्मद का उस पर अधिकार हो सका। महाविहार में कोई धन-सम्पत्ति नहीं थी। वहाँ की सम्पत्ति के वे अमूल्य ग्रन्थ थे, जो बहुत बड़ी संख्या में उसके पुस्तकालयों में संग्रहित थे। सोना, चाँदी, हीरे, मोती आदि की प्राप्ति से निराश होकर मोहम्मद ने उदन्तपुर के विशाल पुस्तकालयों को अग्नि के भेंट कर दिया, और भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के वे अनुपम भण्डार देखते-देखते ध्वंस हो गए। विक्रमशिला के महाविहार का अन्त भी इसी तुर्क-अफगान आक्रान्ता के आक्रमण द्वारा हुआ था।

सौराष्ट्र की राजधानी 'बल्लभीनगरी' भी मध्यकाल में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र थी। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार बल्लभी का महाविहार भी नालन्दा के समान ही प्रसिद्ध था। व्हेनसांग ने लिखा है, कि बल्लभी में 100 विहार थे, जिनमें 6000 भिक्षु निवास करते थे। न केवल बौद्ध, अपितु पौराणिक हिन्दू सम्प्रदायों के विद्यार्थी भी वहाँ विद्याध्ययन के लिए आया करते थे, और बल्लभी नगरी के सम्पन्न श्रेष्ठी इनको उदारतापूर्वक दान दिया करते थे। कथासरितसागर में कथा आती है कि अन्तर्वेदी (गंगा यमुना का दोआव) के द्विज वसुदत्त का पुत्र विष्णुदत्त जब सोलह वर्ष का हो गया, तो विद्याप्राप्ति के लिए बल्लभीपुरी गया। बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, वेदांग, तर्कशास्त्र आदि की भी वहाँ शिक्षा दी जाती थी। बारहवीं सदी में जब तुर्क-अफगान आक्रान्ताओं के सौराष्ट्र पर हमले शुरू हुए, तो बल्लभी के विहारों का ह्रास होने लग गया और शिक्षा के केन्द्र के रूप में इस नगरी का महत्व बहुत कम हो गया। व्हेनसांग तथा अन्य चीनी यात्रियों के यात्राविवरणों से ज्ञात होता है कि भारतीय इतिहास के पूर्व-मध्य काल में जालन्धर, कश्मीर और कान्यकुब्ज आदि में भी अनेक ऐसे विहार व महाविहार विद्यमान थे, जो बौद्ध धर्म तथा दर्शन के अध्ययन के महत्वपूर्ण केन्द्र थे और जिनमें बहुत से भिक्षु तथा स्थविर अध्ययन-अध्यापन में व्यापृत रहते थे। वेद, वेदांग तथा भारत के अन्य प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का भी इनमें पठन-पाठन होता था।

पूर्व-मध्यकाल में जब बौद्ध धर्म ह्रास होने के साथ-साथ प्राचीन सनातन वैदिक व पौराणिक धर्मों का उत्कर्ष हो रहा था, अनेक ऐसे शिक्षा केन्द्र भी विकसित हुए जिनमें वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, दर्शन, शिल्प आदि की शिक्षा की प्रमुखता थी। ये शिक्षा-केन्द्र आश्रमों के रूप में थे। पौराणिक धर्म की पुनःस्थापना के कारण जो बहुत से मठ तथा मन्दिर इस काल में स्थापित हुए थे, उनके साथ ऐसे आश्रमों की भी सत्ता थी जिनमें आर्य शास्त्रों तथा प्राचीन विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। व्हेनसांग के यात्राविवरण से ज्ञात होता है कि सातवीं सदी तक काशी (वाराणसी) नगरी अपने विद्यापीठों के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गई थी, बहुत-से ऐसे आचार्य वहाँ निवास कर रहे थे, जिनके ज्ञान तथा कीर्ति से आकृष्ट होकर दूर-दूर से विद्यार्थी वहाँ विद्याध्ययन के लिए एकत्र होने लगे थे। दसवीं सदी के अन्तिम चरण में जब अलबरूनी भारत आया, तो हिन्दू शास्त्रों से परिचय प्राप्त करने के लिए वह काशी गया था। अपने यात्रा विवरण में उसने लिखा है कि काशी नगरी में भारत के श्रेष्ठ विद्यापीठ विद्यमान हैं। गहड्वाल वंश के अनेक राजाओं ने काशी को अपनी दूसरी राजधानी के रूप में प्रयुक्त किया था और उनके संरक्षण में यह नगरी शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गयी थी। परमार वंश के राज्य की राजधानी धारा नगरी भी पूर्व-मध्यकाल में शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध थी। परमार वंश के अनेक राजाओं ने विद्या और ज्ञान के संवर्धन तथा प्रोत्साहन में असाधारण तत्परता प्रदर्शित की थी। इनमें राजा मुंज और भोज के नाम उल्लेखनीय है। भोज एक विद्वान् और प्रतिभा-सम्पन्न राजा था। वह स्वयं भी अनेक विषयों का प्रकाण्ड पण्डित था। राजनीति, ज्योतिष, वास्तुकला, काव्य, व्याकरण, साहित्य और चिकित्साशास्त्र आदि का वह मर्मज्ञ था और उसने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की थी। अपनी राजधानी धारा नगरी में उसने एक 'भोजशाला' की स्थापना की थी, जिसका स्वरूप एक विद्यापीठ के समान था। भोज की मृत्यु पर किसी कवि ने कहा था, कि अब धारा 'निराधारा' हो गई है, सरस्वती अवलम्बविहीन हो गई है, और पण्डित 'खण्डित' हो गए हैं। काशी और धारा के समान अनहिलपाटन, कन्नौज और काँची आदि अन्य भी अनेक नगरियाँ पूर्व-मध्यकाल में अपने आचार्यों और विद्वानों के लिए प्रसिद्ध थीं और उनमें भी विद्यार्थी दूर-दूर से विद्याध्ययन के लिए आया करते थे। पूर्व-मध्यकाल में भारत में पाल, सेन, गहड्वाल, प्रतिहार, परमार, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि जिन बहुत से राजवंशों के राज्य स्थापित हो गए थे, उनके अनेक प्रतापी राजा विद्या प्रेमी भी थे, और उन्होंने अपने राज्यों में अनेक नये विद्यापीठ स्थापित कर या पहले से विद्यमान शिक्षा केन्द्रों को धन-सम्पत्ति प्रदान कर ज्ञान-विज्ञान के संवर्धन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

शोध सन्दर्भ

1. सैय्यद नूरूल्ला तथा जे.पी. नायक, 'ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया', पृ. 91.
2. वाल्मीकि रामायण - 7/101/11
   तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते।
   गन्धर्व देशे रुचिरे गान्धारविषये च सः।।
3. महाभारत - 1/3/20.
4. द्र. - आर्यसमाज का इतिहास, भाग-2, पृ. 29.
5. द्र. वहीं।
6. द्र. वहीं।
7. द्र. वहीं, पृ. 30.